

प्रकाशनार्थ :

जीवन का समाधिमय उपसंहार – संधारा

– डॉ. दिलीप धींग

(निदेशक : अंतरराष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र)

जैन धर्म में अनगिनत सदियों से संधारे की परम्परा रही है और वर्तमान में भी समाधिमरण की यह अनूठी परम्परा पूरी तरह से जीवित और जीवन्त बनी हुई है। जैन समाज में आये दिन यह पढ़ने-सुनने को मिल जाता है कि अमुक साधु, साध्वी, श्रावक या श्राविका का संधारासहित स्वर्गवास हो गया है। सैनिक जब अपने कर्तव्य का निर्वहन करता हुआ वीर गति को प्राप्त हो जाता है, तब उसकी पार्थिव देह की सैनिक-सम्मान के साथ अंत्येष्टी की जाती है। उसी प्रकार जैन परम्परा में जब कोई गृहस्थ विधिपूर्वक संधारा ग्रहण करके देह-विसर्जन करता है तो उसकी अंत्येष्टी 'सन्त-सम्मान' के साथ की जाती है। विधिपूर्वक संधारा ग्रहण करने के बाद कोई भी गृहस्थ किसी परिवार का सदस्य मात्र नहीं रह जाता है, वह सन्त की भाँति पूरे समाज का हो जाता है, इसलिए उसकी अन्तिम विदाई संघीय स्तर पर सन्त-तुल्य की जाती है या की जानी चाहिये।

संधारा जैन धर्म की आगमसम्मत प्राचीन तप-आराधना है। बारह प्रकार के तप में प्रथम अनशन तप का एक भेद संधारा है। संधारा शब्द के साथ ही संलेखना शब्द का प्रयोग भी मिलता है। यूँ बोल-चाल में संलेखना और संधारा शब्दों का प्रयोग प्रायः एक ही अर्थ में कर दिया जाता है, लेकिन दोनों शब्दों में अन्तर है। संलेखना, संधारा ग्रहण करने की पूर्व अवस्था है। संलेखना का अर्थ होता है, सभी सांसारिक वस्तुओं और सम्बन्धों का विसर्जन। विसर्जन के बाद ज्ञात-अज्ञात समस्त पापों और दोषों की आलोचना करके, सभी जीवों से क्षमायाचना करके तपस्या व आत्म-साधना में लीन होना संधारा है। संधारे की सम्पूर्ति को समाधिमरण या पंडितमरण कहा जाता है। संधारा ग्रहण करने के बाद साधक न इस लोक की इच्छा करता है और न ही परलोक की। वह न जीने इच्छा रखता है और न ही मरने की। समस्त इच्छाओं और कामनाओं से परे होकर आत्मभाव एवं आत्मगुणों में लीन होना संधारा है। इस प्रकार संधारा जीवन और मरण, दोनों को सार्थक करने की अन्तिम आराधना है।

आज का आदमी अपने व्यस्त जीवन में कभी-कभार बोल उठता है कि क्या करें, मरने की भी फुर्सत नहीं है। इस प्रकार व्यक्ति अगणित इच्छाओं और सांसारिकता में उलझा रहता है। प्रायः देखा जाता है कि वृद्धावस्था में भी मोहजन्य वृत्तियाँ युवा बनी रहती हैं। कभी-कभी व्यक्ति अपने अन्तिम समय को भी व्यर्थ की कामनाओं और चिकित्सालय की नलियों व उपकरणों से मुक्त नहीं कर पाता है। परिणामस्वरूप संभवतः उसका मरण सुमरण या समाधिमरण नहीं बन पाता है। कहा जाता है कि अन्त में जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है। आध्यात्मिक जीवन का उत्कर्ष और अविनाशी आत्मा की सद्गति संधारे का प्रयोजन है। अन्तिम समय को समाधिमय बनाने का आशय है मनुष्य-जीवन को अर्थपूर्ण बना लेना।

प्राचीन जैन ग्रंथ आचारांग सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, अन्तकृतदशा, भगवती आराधना तथा अन्य अनेक ग्रंथों में समाधिमरण के विधि-विधान के विस्तृत वर्णन मिलते हैं। संथारे का विधान मुनि और गृहस्थ, दोनों के लिए है। अनेक सन्तों, गृहस्थों और राजाओं के यादगार संथारों के उल्लेख इतिहास, जनश्रुतियों, लोक-चर्चाओं, अभिलेखों और पुस्तकों में मिलते हैं। भारत-रत्न आचार्य विनोबा भावे (1895-1982) ने जब जान लिया कि अब शरीर साथ देने वाला नहीं है, तब उन्होंने समस्त इच्छाओं, औषधियों और आहार का त्याग करके संथारा ग्रहण किया था। भगवान महावीर निर्वाण कल्याणक दीपावली को उन्होंने अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया।

जैन शास्त्रों में श्रावक के तीन मनोरथ बताये गये हैं। उनमें तीसरे व अन्तिम मनोरथ (हृदय की प्रबल भावना) में श्रावक कहता है, वह दिन मेरा धन्य होगा, जिस दिन सभी वस्तुओं, कामनाओं, कषायों और पापों का सर्वथा त्याग करके संथारा ग्रहण करूँगा। भगवान महावीर ने मानव-मात्र को श्रेष्ठ जीवन जीने की कला सिखाई। जीने की कला के साथ ही उन्होंने उत्तम मरण की कला भी सिखाई। जन्म के साथ मरण संसार का अटल सत्य है। इस सत्य को समाधिमय बनाकर मृत्यु को महोत्सव का रूप देना संथारा है। कभी-कभी संयम/सत्संकल्प की रक्षा तथा शरीर की रक्षा में से किसी एक को चुनना होता है। ऐसे विकट समय में आत्मार्थी व्यक्ति संयम व सत्संकल्प की रक्षा के लिए देहासक्ति छोड़कर संथारा ग्रहण कर लेता है।

मुख्य रूप से जीवित रहने की सारी संभावनाएँ क्षीण हो जाने पर संथारा अंगीकार करने की परम्परा रही है। अत्यन्त वृद्धावस्था, असाध्य रोग या अन्य किसी अपरिहार्य कारण के उपस्थित होने पर जब साधक को लगता है कि अब शरीर जवाब दे रहा है तथा किसी भी प्रकार के उपाय शरीर को टिकाये रखने के लिए समर्थ नहीं है, तब शरीर के लक्षणों व अनुभवियों की राय के आधार पर गुरु और वरिष्ठजनों की आज्ञा से संलेखना-संथारा ग्रहण किया या करवाया जाता है। संथारा दो प्रकार का होता है - सागारी (छूट-सहित या सशर्त) और आजीवन। किसी आकस्मिक संकट के समय एवं शयन-पूर्व सागारी संथारा लिया जा सकता है। सागारी संथारे में संकट या मृत्यु टल जाने पर साधक पुनः अन्न-जल ग्रहण करता है और सामान्य जीवन जीता है। सागारी संथारे की चर्चा कम ही होती है, लेकिन अनेक सजग साधक इसे नित्य नियम की तरह ग्रहण करते हैं। संथारा देह की मृत्यु और आत्मा की अमरता की हमेशा याद दिलाता रहता है। अन्य दृष्टि से भी संथारा दो प्रकार का होता है - तिविहार और चौविहार संथारा। तिविहार संथारे में प्रासुक अचित्त जल ग्रहण करने की छूट होती है, जबकि चौविहार संथारे में सभी प्रकार के अन्न-जल का पूर्ण त्याग कर दिया जाता है। जैन परम्परा के अलावा वैदिक और बौद्ध परम्परा में भी स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण के उल्लेख और अनुमोदन मिलते हैं।